त्यागने और प्राकृतसुख को ठुकराने से प्राप्त हो जाता है। यही संन्यास की परम संसिद्धि है।।४९।।

तात्पर्य

सच्चा संन्यास अपने को नित्य निरन्तर श्रीभगवान् का भिन्न अंश समझना है। जो इस भाव से युक्त है, उसे स्वाभाविक रूप में अपने कर्मफल को भोगने का कुछ भी अधिकार नहीं हो सकता। वह श्रीभगवान् का भिन्न-अंश है, इसलिए उसके कर्मफल श्रीभगवान् द्वारा भोग्य हैं। यही वास्तविक कृष्णभावनामृत है और कृष्णभावनाभावित कर्म करने वाला ही सच्चा संन्यासी है। इस भाव से परमसुख मिलता है, क्योंकि वह वास्तव में श्रीभगवान् के लिए कार्य कर रहा है। ऐसा पुरुष किसी प्राकृत वस्तु में आसक्त नहीं रहता; श्रीभगवान् की सेवा से मिलने वाले दिव्य सुख के अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ में आनन्द न लेना उसका स्वभाव सा बन जाता है। संन्यासी को पूर्वकर्मों के फलरूप बन्धन से मुक्त समझा जाता है; परन्तु कृष्णभावनाभावित पुरुष तो संन्यासी का वेष बनाए बिना ही इस ससिद्धि को प्राप्त है। इस मनोदशा का नाम 'योगारूढ', अर्थात् योग की संसिद्ध अवस्था है, जैसा तीसरे अध्याय का प्रमाण है। **यस्तु आत्मरतिरेव स्यात्**। जो पुरुष आत्मा में ही रमण करता है, उसे अपने कर्म से किसी फल का भय नहीं हो सकता।

सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।।५०।।

सिद्धिम्=सिद्धि को; **प्राप्तः**=प्राप्त हुआ; **यथा**=जिस प्रकार; **ब्रह्म**=ब्रह्म को; **तथा**=वैसे; **आप्नोति**=प्राप्त होता है; **निबोध**=जान; **मे**=मुझ से; **समासेन**=संक्षेप में; **एव**=ही; **कौन्तेय**=हे अर्जुन; **निष्ठा**=अवस्था है; **ज्ञानस्य**=ज्ञान की; **या**=जो; **परा**=दिव्य।

अनुवाद

हे अर्जुन! सिद्धि को प्राप्त पुरुष जैसे ब्रह्म की प्राप्तिरूप परम सिद्ध अवस्था को प्राप्त होता है, उसका प्रकार संक्षेप में मुझ से सुन।।५०।।

तात्पर्य

श्रीभगवान् अर्जुन से उस विधि का वर्णन करते हैं, जिसके द्वारा भगवान् के लिए कर्तव्य-कर्म का आचरण करने से परमसिद्ध अवस्था हो सकती है। श्रीभगवान् की प्रीति के लिए कर्मफल का त्याग करने मात्र से ब्रह्मभूत अवस्था प्राप्त हो जाती है। यही स्वरूप-साक्षात्कार की पद्धति है। ज्ञान की सच्ची पूर्णता शुद्ध कृष्णभावना की प्राप्ति ही है, जैसा आगे श्लोकों में कहा है।

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।।५१।।
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।।५२।।